वीर संवत २४९२, फाल्गुन कृष्ण ६, शनिवार
दि. १२-३-१९६६, ढाल-६, श्लोक-११,१२,१३. प्रवचन नं. ५३

'छहढाला' छठवीं ढाल। इसकी ११वीं गाथा है। हिन्दी में फर्क होगा, नहीं ? है ? हिन्दी में ११, गुजराती में ११, देखो ! सात गाथा तक कल हुई थी और ८, ९ १० पहले हो गयी थी। दूसरा पद था न। एक दिन थे या नहीं। रविवार, अमावश्या। अमावश्या को रविवार (था), क्योंकि सोमवार को एकम से न ? वे रविवार को आये थे और फीर भाग गये थे न ? पता पड़े न, दूसरे दिन नहीं रहे इसलिए। सोमवार को एकम से और मंगलवा को दूज थी।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- नहीं, नहीं; वे तो नहीं रुकते थे। इस अपेक्षा से याद रह गया हो ऐसा। कि दूज पर आये थे और नहीं रुकना था, ऐसा। उस दिन यह चला था। पहले ८-९-१० अब यहाँ ११वीं साथ सन्धि करके बात करते हैं। देखो !

**स्वरूपाचरण-चारित्र और अरिहन्त अवस्था**

**यों चिन्त्य निजमें थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो;**
**सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो।**
**तब ही शुकल ध्यानागगि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो;**
**सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोकको शिवमग कह्यो ।।११।।**

पहला '**यों...**' शब्द पड़ा है। स्वरूपाचरणचारित्र में इस प्रकार विचार करके.. इन तीन गाथाओं में क्या कहा, अन्तिम क्या है ? देखो ! कि धर्मीजीव प्रथम आत्मा का निश्चयसम्यग्दर्शन प्रगट करके, आत्मा अखण्ड आनन्द शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि करके आत्मा के ज्ञान के वेदन द्वारा स्वरूपाचरण का अंश प्रगट करके जो सम्यग्दर्शन हुआ,

उस भूमिका को चौथा गुणस्थान कहते हैं। समझ में आया ?

आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु ! उसकी पवित्रता की एकता में, इस पवित्र स्वरूप निज भगवान आत्मा की एकता में जो पवित्रता का अंश प्रगट होता है, वह निर्विकल्पदशा है। अन्दर में भेद बिना (अर्थात्) आत्मा ज्ञानगुण और आत्मा धरनेवाला-ऐसा भेद भी, प्रथम सम्यग्दर्शन के काल में स्व-आश्रय में यह भेद नहीं होता। यहाँ ऊपर की बात की है। समझ में आया ?

यहाँ ऊपर की बात की है कि जिस ध्यान के बाद श्रावक को देशचारित्र आंशिक प्रगट होता है, छठवें गुणस्थान में मुनि को सकलचारित्र प्रगट होता है। पश्चात् स्वरूप में लीनता होने पर सातवें गुणस्थान की बात विशेष यहाँ ली है। जो ध्यान में इतना लवलीन होता है.. विचार कहते हैं, यहाँ '**यों चिन्त्य**' शब्द प्रयोग किया है। पहले विचारणा में वह होता है। क्या ? कि-

**मैं साध्य साधक में अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं;**

**चित् पिंड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितै॥१०॥**

दसवीं गाथा के अन्तिम दो पद है। मैं एक साध्य और साधक, यह अबाधक विचार भी जहाँ छूट जाते हैं। मैं साध्य हूँ-साधनेवाला अथवा साधनेयोग्य वस्तु, में साधक हूँ कि यह विधानरूप बाधक है, यह समस्त अबाधक अथवा बाधारहित हूँ। '**कर्म अरू तसु फलनितैं..**' कर्म और उसके फल से छूट जाता है-ऐसा विचार अन्दर करता है। '**चित् पिंड चंड..**' ज्ञानपिण्ड चण्ड-उग्र। अकेला ज्ञान का गोला भगवान चैतन्यसूर्य, उसमें '**अखण्ड सुगुणकरंड...**' अखण्ड सुगुणकरण्ड (अर्थात्) अकेले गुण की करण्ड आत्मा है। भगवान जाने क्या कहते हैं ? समझ में आया ?

धर्मी जीव को पहले सम्यग्दर्शन में ऐसा प्रगट होता है। यहाँ सातवें गुणस्थनान की बात है। यहाँ सातवें में चितपिण्ड-मैं ज्ञान का पिण्ड चैतन्य समुद्र हूँ, अन्दर स्वभाव (हूँ)। चण्ड उग्र स्वभाव से भरा हुआ अखण्ड-जिसमें खण्ड नहीं; सुगुण करण्ड-अकेले अनन्त गुण। जैसे सिद्ध भगवान को अनन्त गुण हैं, वे पर्याय में प्रगट हो गये हैं। भगवान सिद्ध परमात्मा को (प्रगट हुए हैं।) इतने ही गुण मुझ में सुगुण करण्ड-इन सब अनन्त गुणों का मैं करण्ड-भण्डार हूँ।

'**च्युत पुनि कलनितैं...**' मैं अशुद्धभाव से रहित हूँ। अशुद्ध जो विकल्प-मलिन शुभाशुभराग (होता है), उससे (रहित) हूँ, मलिन से रहित हूँ। स्वरूप के पूर्ण गुण से अखण्ड एकरूप हूँ-ऐसा जहाँ ध्यान जमें, तब उसे विकल्प छूट जाते हैं, सप्तम गुणस्थान का स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होता है। समझ में आया ? जो मुनि को होता है। मुनि को अन्दर में छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान (होता है)। सच्चे मुनि ! उन्हें मुनि कहते हैं न ? बाहर से कोई वेष पहिनकर छोड़ा या नगन हो, वह कोई मुनि (नहीं है)।

अन्तर में आनन्दस्वरूप का स्वाद लेकर आत्मा में अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसका स्वाद-अनुभव लेकर और आगे उग्ररूप से आनन्द के स्वाद में स्थिर होता है, तब उसे सप्तम गुणस्थान प्रगट होता है, फिर विकल्प उठे तो छठवां गुणस्थान आता है-ऐसा छठवाँ-सातवाँ हजारों बार आता है। समझ में आया ? उसका-छठवें का-सातवें का काल बहुत थोड़ा है, परन्तु वेदन में सप्तम आने पर बहुत अन्तर थोड़े काल आनन्द का वेदन हो जाता है। छठवें गुणस्थान में विकल्प आने पर फिर प्रमत्तभाव हो जाता है। उसे अब छोड़कर यहाँ अकेली अप्रमत्तदशा सातिशय, आगे बढ़ने की दशा का वर्णन करते हैं। कहो, समझ में आया ?

'**यों चिन्त्य...**' देखो ! ऐसा चिन्तवन करते अन्तर में देह, वाणी, मन या पुण्य-पाप की अशुद्धता मुझमें है ही नहीं; मैं तो पूर्ण आनन्दकन्द सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप हूँ। जैसे सिद्ध हैं, वैसी ही मेरी चीज-अन्दर वस्तु है-ऐसा ध्यान में, ध्यान से पहले पहली विचारणा करते हुए '**यों चिन्त्य...**' यह शब्द पड़ा है। ऐसी पहले विचारणा करता है। फिर '**निज में थिर भये...**' विचारकर आत्मस्वरूप में लीन होने से... समझ में आया ? उसने मोक्षमार्ग प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो आत्मा के वेदन से प्रगट किया होता है, तत्पश्चात् मुनि होता है, द्रव्यलिंगी-बाहर में नग्न मुनि होता है। अन्तर में भाव-आनन्दकन्द की उग्रता तीन कषाय के अभाव की वेदन में होती है। वह सकलविरतिवाला भी ऐसे विचार करके, जब (उन्हें भी) छोड़कर ध्यान में स्थिर होता है, तब उसकी बात है। वह '**निज में थिर भये...**'

मुमुक्षु :- चिन्तवन...

उत्तर :- वह चिन्तवन एकाग्र होने पर छूट जाता है। ऐसे लीन होने पर वह चिन्तवन-

विकल्प (छूट जाता है)। अन्तर में आनन्द आने पर विकल्प छूट जाए... चिट्ठी पढ़ी है या नहीं ? 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' में आता है। 'सविकल्प द्वारा निर्विकल्प ध्यान।' भाई ! सम्यक्त्वी को भी (ध्यान होता है)। चौथे गुणस्थान में गृहस्थाश्रम में हो.. आहा..हा... ! यहाँ कौन जाने क्या होगा धर्म ? समझ में आया ?

धर्म कोई बाहर की प्रवृत्ति, यह प्रवृत्ति और यह और वह कोई धर्म नहीं है, धर्म (तो) अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा वस्तु है न ? चिदानन्दघन। देहप्रमाण शीतल शिला, शान्त शिला आत्मा है, अरूपी। यह देह तो मिट्टी है, वाणी जड़ है, आठ कर्म है, वे मिट्टी-धूल है; अन्दर शुभ और अशुभभाव होते हैं, वे विकार है। इनके अतिरिक्त पूरा दल चैतन्य अरूपी विज्ञानघन, अनन्त शीतल, शीतल शान्त शिला, अविकारी वीतरागस्वभाव से भरा आत्मा अरूपी है, परन्तु उसका स्वरूप है। अरूपी है परन्तु उसका स्वरूप है। इस मिट्टी के रंग, गन्ध, रस उसमें नहीं है। वह अरूपी घन, घन अनन्त गुण का विज्ञानघन पिण्ड शीतल शान्त और अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण मूर्ति देहप्रमाण भिन्न है। समझ में आया ?

उसका प्रथम भान होने में सम्यग्दर्शन होने के बाद जब मुनि होता है-सकलविरति अत्यन्त त्यागी, नग्नदशा, अन्तर में आनन्द की उग्रता (सहित), वह जब ध्यान में स्थिर होता है, तब की यह बात करते हैं। पहले बहुत बात (आ गयी है)। यह तो अन्तिम गाथा है न ? अन्तिम गाथा। जिस ध्यान में प्रमाण, नय, निक्षेप भी नहीं। यह नय है, यह ज्ञान है, यह ज्ञान को जाननेवाला नय है, पूरी वस्तु को जाननेवाला प्रमाण (ज्ञान) है, यह विचार भी जहाँ नहीं है-ऐसे ध्यान में वह जमे (तब) साथ में बड़े हजार बेण्ड-बाजे एकत्रित होकर बजते हों (तो भी) उसे पता नहीं पड़ता। समझ में आया ?

यह '**निज में थिर भये...**' देखो ! अपने स्वरूप में स्थिर लीन होने पर '**तिन अकथ जो आनन्द लह्यो...**' उन मुनियों को, कहा न जा सके-ऐसे वनच से पार आनन्द होता है। उस आनन्द का क्या कहें ? भाई ! इस राग-द्वेष का दुःख है। राग-द्वेष करता है, वह दुःख है। जो शुभाशुभभाव होते हैं, वह दुःख है। अन्दर उस दुःख से रहित दशा हुई तो दुःख रहित यह अतीन्द्रिय आनन्द हुआ। समझ में आया ? यह खरगोश के सींग जैसा नहीं है। अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है-ऐसा कहते हैं। वस्तु है या नहीं ? वस्तु में एकाग्र होने पर वस्तु में भरा

हुआ अतीन्द्रिय आनन्द (प्रगट होता है।) आत्मा त्रिकाल नित्यानन्द आत्मा है। पता नहीं पड़ता आत्मा कैसा होगा ? ऐसा आत्मा होगा ?

नित्यानन्द आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा है। केवलज्ञानी के ज्ञान में तीन काल के जितने आत्मा जाने हैं, उन भगवान ने अन्तर में, आत्मा को आनन्द और अतीन्द्रियज्ञान-शान्ति का कन्द देखा है। समझ में आया ? परमेश्वर तीर्थंकरदेव ! बाद में यह यहाँ कहेंगे... केवलज्ञानमें से मार्ग बतायेंगे-ऐसा कहेंगे। इस आत्मा का भान-अन्तर में स्थिर होने पर इतना आनन्द आता है कि अकथ्य-वाणी में उस आनन्द का कथन नहीं हो सकता है। समझ में आया ?

जगत की एक घी जैसी साधारण चीज, स्वाद ख्याल में होने पर भी दूसरे किसी पदार्थ के साथ तुलना करके बता सके-ऐसी वाणी में ताकत नहीं है। समझ में आया ? घी का स्वाद आने पर वह स्वाद कैसा है ? - यह ख्याल में होने पर भी, कैसा, किसके साथ तुलना करने-मिलान करके उसका माप-प्रमाण दिया जा सके-ऐसी कोई चीज नहीं है, ऐसी वाणी नहीं है, तो भगवान आत्मा की अन्तर दशा में अनुभव-दृष्टि में पड़ने पर जो आनन्द आता है, (वह) अकथ्य है। क्या होगा यह ? यह कषाय होती है, तब पूरे शरीर में मानो ताप.. ताप.. आकुलता होती हो। रोमांच (रोम खड़े) हो जाता है न ? ऐसी आकुलता, आकुलता होती है। मुझे कहीं ठीक नहीं है, हाँ ! ऐसी प्रतिकूलता होती है न ? मुझे कहीं ठीक नहीं है, मुझे कहीं शान्ति नहीं है-ऐसा नहीं कहते ? मुझे अन्दर दाह है, तेल की तरह जलता है। वह क्या जलन है ? वह राग-द्वेष की आकुलता है। उस आकुलतारहित अन्दर की दशा हो, उसे आनन्ददशा कहते हैं। समझ में आया ? वह आनन्द अकथ्य-कहा न जा सके-ऐसा वचन से पार '**आनन्द लह्यो**', आनन्द लह्यो अर्थात् ऐसा होता है।

'**वह आनन्द इन्द्र को, नागेन्द्र को, (नरेन्द्र) चक्रवर्ती को या अहमिन्द्र को कहने में नहीं आया...**' अर्थात् उन्हें नहीं हो सकता। समझ में आया ? यह अतीन्द्रिय आनन्द का कथन नागेन्द्र, नरेन्द्र को भी हो सके-यह वस्तु का पता नहीं है अथवा उन्हें नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन का आंशिक (आनन्द) है, उसकी (यहाँ) बात नहीं है। यह तो उत्कृष्ट... बात है। चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियों में भी वह आनन्द नहीं है, देव को करोड़ों अप्सराओं में भी वह आनन्द

नहीं है।

'**वह स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट होने पर...**' अब आगे ले जाते हैं। '**तब ही (शुक्ल ध्यानाग्नि करि) शुद्ध ध्यानरूपी अग्नि द्वारा...**' अन्तर में शुक्ल अर्थात् उज्जवल एकाग्रता, उज्जवल एकाग्रता (होती है)। उजली कहते हैं न ? तुम्हारे स्वच्छ कहते हैं ? क्या कहते हैं उजली को ? उज्जवल.. शुक्ल.. शुद्ध चैतन्यपिण्ड पूर्ण, उसमें निर्मल ध्यान की धारा, निर्मल ध्यानधारा एकाग्र होवे, उसे शुक्लध्यान कहते हैं। समझ में आया ? उस '**शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा (चउ घाति विधि कानन) चार घातिकर्मों रूपी (कानन) जंगल...**' जंगल, बड़ा जंगल, उसे जल जाता है। घाति से द्रव्यघाति की बात की है परन्तु भाव घाति भी उसमें आ गया। अपने शुद्ध स्वरूप में बहुत लीन होने पर अशुद्धता के भाव का नाश हुआ, वह भावघाति का नाश हुआ-अशुद्धता का नाश हुआ, वह (भाव) कर्म का नाश हुआ; वह जड़घाति का नाश उसके स्वयं के कारण हुआ है।

उसे चार घाति(कर्म) जल जाते हैं '**और केवलज्ञानी (तीन काल) तीन लोक में...**' लो ! भाषा तो पहले यह आयी। देखो ! चहुँ घाति जलते हैं। कथन की शैली क्या करना ? केवलज्ञान द्वारा तीन काल '**तीन लोक में होनेवाले समस्त पदार्थों के...**' तीन काल-तीन लोक और अलोक-ऐसा ले लेना.. '**समस्त पदार्थों के गुण...**' और उनकी अवस्था '**प्रत्यक्ष जान लेते हैं...**' लो ! उसे अरिहन्त अवस्था कहते हैं।

पहले से शुरू करके.. पहले दु:ख की दशा से शुरु किया था। पहले शुरु किया है न ? पहली ढाल में। ऐसे-ऐसे दु:ख सहन किये, ऐसे दु:ख सहन किये; अब आनन्द तक ले गये। उन सब दु:खोड़ का नाश करके, जिन्होंने केवलज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट किया है। कहो, समझ में आया ? '**तब.. वे प्रत्यक्ष जान लेते हैं और तब (भविलोक को शिवमग कह्यो) भव्य जीवों को...**' पात्र जीव थे, उनके लिये कहते हैं कि '**मोक्षमार्ग बतलाते हैं।**' यह तो वाणी सहज निकलती है, परन्तु पात्रजीव के लिये अरिहन्त भगवान केवलज्ञान होने के बाद वाणी द्वारा मोक्षमार्ग बतलाते हैं-ऐसा कहा जाता है।

**भावार्थ :-** '**इस स्वरूपाचरणचारित्र के समय...**' विपरीत आचरण, वह विभआव

आचरण, विकार आचरण है। यह स्वरूपाचरण अर्थात् अविकारी आचरण। समझ में आया या नहीं ? विकारी शुभाशुभपरिणाम, वह विभाव आचरण है। यह स्वरूपाचरण है। चौथे गुणस्थान से स्वानुभूत्यावरण का अभाव होने पर.. चौथे गुणस्थान से स्वानुभूत्यावरण का क्षयोपशम होने पर, यहाँ स्वयं ही उघाड़दशा प्रगट होने पर अनुभूति में आनन्द का अंश स्वानुभूति प्रगट होती है। समझ में आया ? उस स्वानुभूति की उग्रता (होने पर) पूर्ण अशुद्धता मिटकर घाति (कर्मों) का अभाव हुआ। पूर्ण अनुभूति हो गयी। आत्मा की पूर्ण अनुभूति (हुई), उसका नाम केवलज्ञान कहलाता है।

ऐसे आचरण के '**समय मुनिराज उपरोक्तानुसार विचार करके...**' उपरोक्तानुसार अर्थात् यह तीन गाथायें कही न ?७-९ और १० '**यों चिन्त्य**' शब्द है न ?'**जब आत्मा में लीन हो जाते हैं, तब उन्हें जो आनन्द होता है, वैसा आनन्द इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र (चक्रवर्ती) या अहमिन्द्र (कल्पातीत देव) को भी नहीं होता।**' संसार के विषयों में सुखमय आनन्द नहीं होता। कितनों को तो ऐसा लगता है कि यह सब ऐसा आत्मा का ऐसा स्वरूप होगा ? ऐसा वर्णन वह क्या होगा यह ?

मुमुक्षु :- नमूना बताकर माल..

उत्तर :- ठीक ! यह तो अभी पहले कहा न-स्वानुभूत्या का आवरण मिटने पर अन्तर अनुभूति होवे, वह उसका नमूना है। यह तो पहले कहा। कौन करे ? तो कहते हैं, कौन नमूना बतावे ? भाई ! ऐसा कि नमूना बताकर इतनी बड़ी बात (करना)। कहा, पहले तो बात की थी। भगवान आत्मा जब.. जब.. जब.. जब.. स्व में आवे, तब उसे अनुभूति होती है। लाख बात की बात, चाहे जितना पढ़ा हो और चाहे इतना सीखा हो और चाहे इतने व्रतादि पालन किये हों और कषाय की मन्दता की हो और सब लाख बात की हो, स्वचैतन्य में एकाग्र होकर अनुभूति में आत्मा के आनन्द का वेदन और वीर्यान्तराय का उतना क्षयोपशम, स्वानुभूति के आवरण का क्षयोपशम... समझ में आया ? उतना अनुभव के वेदन में पहले उसका नमूना आता है। समझ में आया ? पहले नमूना बताये बिना यह सब ?-ऐसा कहते हैं वे। कौन बताये ? क्या होगा ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- हाँ, तो कहा न ! पहले से शुरूआत तो की थी, परन्तु उसको चखे बिना स्वाद का क्या पता पड़े ? स्वाद तो यह चखे तब इसे पता पड़े न कि ऐसा स्वाद वह लेता है। ऐसा स्वाद वह लेता है-यह बात किसे पता पड़े ? उस स्वाद को स्वयं जाने उसे पता होता है कि ऐसा स्वाद मुझे आया, वैसा स्वाद उसे आया। या दूसरे का स्वाद जानकर यहाँ स्वाद आ जाता है ? ऐसा कि लोचा स्वयं खाये और अन्य को (स्वाद आ जाए) ? आहा..हा... !

यह चैतन्य सत्ता भगवान अनन्त गुणों का पिण्ड है। समस्त विकल्पों की रुचि और पर का आश्रय छोड़कर, पहले ही भगवान के भण्डार के खजाने को पहिचाने। यह पहिचाने कौन ? दूसरा कोई पहिचान करा देगा ? लो !

मुमुक्षु :- जिसे भोग आ गया है, उसे तो सरल हो गया है, परन्तु हमारे जैसों को ?

उत्तर :- यही कहते हैं न ? इसे ऐसा करना-ऐसा कहते है। इसे ऐसा करना। इसे बहिर्मुख की वृत्ति छोड़कर अन्तर्मुख में जाना। यह इसका प्रयोग और योग और अजमाइश है। इसीलिये तो कहा-'**लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी चगत द्वंद-फंद आतम ध्याओ।**' स्वयं वहाँ पहले कह गये हैं। '**परद्रव्यनतैं भिन्न आत्मरुचि भला है।**' आया था न अन्दर ? उसमें यह कहा था न वहाँ। परन्तु रुचि कौन छोड़े ? दूसरा-कहे वह छोड़े ?

शुद्धस्वरूप पूर्ण आनन्द और अनन्त गुण का पिण्ड है। यह पहले से इसके ख्याल में प्रतीतिरूप से यथार्थ श्रद्धा होनी चाहिए। यह श्रद्धा होने के बाद विकल्प तोड़कर अन्दर स्वरूप में स्थिर होना। ('समयसार' गाथा) १४४ में आता है न ? ज्ञानस्वरूप आत्मा है, आनन्दस्वरूप आत्मा है-उसका पहले विकल्प द्वारा निर्णय करना, तत्पश्चात् वह विकल्प तोड़कर मतिज्ञान के भाव को अन्दर में स्थापित करना और श्रुत को अन्दर... भाई ! आता है न ? समझ में आया ? ('समयसार गाथा') १४४... आहा..हा... ! कर्ता को यह क्रिया करने की है या किसे करनी है ? यह ऊपर आ गया है। उसमें आ गया था या नहीं ? उसमें आया था-नौंवे मे आया था।

**चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ।**
**तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध उपयोग की निश्चल दशा;**

नौंवें मे आ गया है। वह उस दिन आ गया था। तुम थे, तब नहीं आया था ? है ?

**जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प, वच भेद न जहाँ;**
**चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ।**

नौंवाँ श्लोक, नौवाँ। तुम्हें निकालने में देर लगी। '**चिद्भाव कर्म...**' वहाँ ज्ञान की निर्मलतारूपी परिणाम ही अपना कार्य है। भाई ! पुण्य के विकल्प का कार्य और आत्मा कर्ता- यह अन्तर अनुभव में नहीं होता। '**चिद्भाव कर्म...**' कर्म अर्थात् कार्य; कार्य अर्थात् कर्तृत्व। उसका कर्तृत्व-चिद्भाव का कार्य वही कर्तृत्व है। '**चिदेश (करता)...**' भगवान ज्ञान का ईश, भगवान उसका कर्ता है, दूसरा कोई कर्ता है नहीं। कौन कर्ता ? उसका विकल्प कर्ता नहीं तो दूसरा कर्ता कहाँ से लाना ? समझ में आया ? भगवान आत्मा स्वयं कर्ता चिद्स्वरूप ज्ञान; चिदेश-चिद्-ज्ञान का ईश्वर भगवान और ज्ञान की निर्मल, निर्मल-निर्विकारी श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति, आनन्द आदि पर्याय, वह चिद्भाव, यह उसका कार्य है। आनन्द का अंश, शान्ति का अंश प्रगट हुआ, वह उसका कर्म-कार्य है।

'**चेतना किरिया तहाँ।**' इस चेतना की वहाँ क्रिया है, राग की क्रिया नहीं। अकेला चैतन्य घुलकर स्थिरता की क्रिया करता है। ऐसी तीन परन्तु '**तीनों अभिन्न...**' तीन, परन्तु वहाँ भेद नहीं। '**अखिन्न शुद्ध उपयोग की निश्चल दशा...**' कहो, समझ में आया ? एक सैकण्ड का कितना भाग कहा था ? हजारवाँ कहा था न ? फिर बहुत विचार हुए। वापस विपल और पल का आता है या नहीं ? भाई ! क्या (है यह) ? पल बड़ी या विपल। पल बड़ी, विपल छोटी। साठ विपल की एक पल। साठ विपल का एक सैकण्ड, साठ सैकेण्ड का एक मिनिट अर्थात् ऐक सैकेण्ड का छत्तीसवाँ भाग, छत्तीसवाँ भाग विपल हुई। छत्तीसवाँ, छत्तीसवाँ भाग हुआ न ? छत्तीस सौ, जिसका हजारवाँ भाग कहते थे न तुम ? सवेरे नहीं ? सैकेण्ड का हजारवाँ भाग.. परन्तु यहाँ तक की बात तो पाठशाला में सीखे थे तब थी। एक सैकेण्ड का साठवाँ भाग तो पल और उसका साठवाँ भाग विपल अर्थात् छत्तीससोवाँ भाग। पाठशाला में चलता था, इसलिए कोई (कहता था), हजारवाँ भाग पकड़ सका है। यन्त्र होगा, ऐसे पकड़े क्या अन्दर ? यहाँ तो वह भी पहले पाठशाला में ऐसा चलता था। वह ऐसे पकड़ सके अर्थात् कि यह आत्मा का भाग है-ऐसा पकड़ने कहाँ जाए ? परन्तु उसके ख्याल में लेले कदाचित् कि इतना भाग यह होता है, होना चाहिए। वह विपल एक सैकेण्ड का छत्तीससौंवां माप। ओ..हो..हो... ! समझ में

आया ? उसमें भी अनुभूति का काल थोड़ा (है)। छठवें गुणस्थान का काल बहुत थोड़ा (और) सातवें का तो उससे (छठवें से भी) आधा है।

कहते हैं कि जहाँ अकेला अखिन्न-खेद नहीं और अभिन्न एकरूप वर्तता है। समझ में आया ? ऐसी दशा में आनन्द इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, अहमिन्द्र देव को भी नहीं होता, भले थोड़ा काल (आवे) परन्तु उसमें वस्तु का भास है न ? समझ में आया ?

**'यह स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होने के पश्चात् स्वद्रव्य में उग्र एकाग्रता से शुक्लध्यानरूप अग्नि द्वारा..'** आगे बढ़ता है न ? आगे बढ़ा है। **'चार घातिकर्मों का नाश होता है...'** नीचे स्पष्टीकरण किया है। **'घातिकर्म दो प्रकार के हैं-द्रव्यघातिकर्म और भावघातिकर्म। उनमें शुक्लध्यान द्वारा शुद्ध अवस्था प्रगट होने पर भावघातिकर्मरूप अशुद्धपर्याय उत्पन्न नहीं होती...'** उत्पन्न नहीं होती और नाश हुआ-ऐसा कहा जाता है। क्या कहा ? क्या कहा ? शुक्लध्यान की शुद्धता की पर्याय प्रगट होने पर अशुद्धता-भावघातिकर्म की जो अशुद्धता है, वह उत्पन्न नहीं होती, उसे भावघातिकर्म का नाश किया-ऐसा कहा जाता है। भाई ! उलझन है, भाई ! पूछे तब क्या होगा (-ऐसी उलझन है।) यहतो कहा हुआ पूछा था।

यहाँ भावघाति का नाश शब्द कहा न ? तो नाश की व्याख्या यह (है)। नाश अर्थात् क्या ? यह अशुद्धता है, उसका नाश करूँ ऐसा है ? और यह घातिकर्म-यह जड़ है, इन्हें नाश करुँ-ऐसा है ? इसे स्वरूप में शुद्धता में लीन.. लीन.. लीन.. उग्र में एकाकार शुक्ल उज्जवल एकाकार होकर अशुद्धता उत्पन्न नहीं हुई-भावघाति की अशुद्धता उत्पन्न नहीं हुई, उसे भावघाति का नाश किया-ऐसा कहा जाता है।

आत्मा, राग के नाश का भी कर्ता नहीं है। नहीं आया ? अशुद्धता के भाव का नाशकर्ता, यह आत्मा का नाम नहीं। यहाँ तो घातिकर्म का जड़ का नाश किया (-ऐसा कहा), लो ! यहाँ तो कहा घातिकर्म का नाश किया। उसमें ('समयसार' में) कहा कि आत्मा, राग का नाश करे-परमार्थ से ऐसा आत्मा मैं है ही नहीं। राग के नाश का कर्तापना आत्मा में नहीं है। नाश का कर्तापना नहीं है। आहा.. ! अब यह अर्थ समझे नहीं और (कहे) यहाँ कहा देखो ! घाति का नाश किया या नहीं ? अमुक का किया या नहीं ? यह भगवान का वचन है या नहीं ?(-ऐसा

कहे)। परन्तु भगवान का वचन किस अपेक्षा का ? तो वह (भी) भगवान का वचन है या नहीं ? 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं कि अशुद्धता के नाश का आत्मा कर्ता (है), यह नाममात्र आत्मा में है; परमार्थ से अशुद्धता के नाश का आत्मा कर्ता (है), यह नाममात्र आत्मा में है; परमार्थ से अशुद्धता के नाश का कर्तापना आत्मा में नहीं है। (जब) अशुद्धता के नाश का कर्तापना आत्मा में नहीं तो फिर घातिकर्म के नाश का कर्तापना आत्मा में कहाँ से होगा ? समझ में आया या नहीं ?

शब्द तो ऐसा लिया है, देखो ! '**चउ घातिविधि कानन दह्यो...**' संक्षिप्त लिखे तो क्या लिखे ? समझ में आया ? भावघातिकर्म अशुद्धपर्याय उत्पन्न नहीं होती, उसे भावघातिकर्म का शुक्लध्यान द्वारा नाश किया-ऐसा कहा जाता है। '**और उसी समय द्रव्यघातिकर्म का स्वयं अभाव होता है...**' यह तो स्वयमेव होता है, तथापि यहाँ (अशुद्धता का) नाश होने पर उस भाव अशुद्धता का निमित्तपना उसका था, इसलिए इसने नाश किया-ऐसा व्यवहार से कहा (जाता है)। असद्भूत व्यवहारनय (से कहा जाता है)। '**वह द्रव्यघाति कर्म का नाश है।**' कहो !'**वह द्रव्यघाति कर्म का नाश है।**' कहो !'**और अरहन्त अवस्था की प्राप्ति होती है तथा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है...**' यह अरहन्त अवस्था की प्राप्ति है। '**जिसमें तीन लोक और तीन कालवर्ती समस्त पदार्थ स्पष्ट ज्ञात होते हैं और तब भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं।**' लो ! भव्य जीवों को मोक्ष का मार्ग कहते हैं। यह ११वीं (गाथा पूरी) हुई। भव्य जीवों को भगवान, मोक्ष का मार्ग कहते हैं, वहाँ लाये। सर्वज्ञ परमेश्वर, मोक्ष का मार्ग कहते हैं। वाणी द्वारा कहते हैं-यह भी निमित्त का कथन है।

## सिद्धदशा का (सिद्ध स्वरूप) का वर्णन

**पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमांहि अष्टम भू वसैं;**
**वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।**
**संसारखारअपार पारावार तरि तीरहिं गये,**
**अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥**

अन्वयार्थ :- (पुनि) केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् (शेष) शेष चार (अघाति विधि) अघातिया कर्मों का (घाति) नाश करके (छिनमांहि) कुछ ही समय में (अष्टम भू) आठवीं पृथ्वी-ईषत प्राग्भार-मोक्ष क्षेत्र में (बसैं) निवास करते हैं; उनको (वसु कर्म) आठ कर्मों का (दिनसैं) नाश हो जाने से (सम्यक्त्व आदिक) सम्यक्त्वादि (सब) समस्त (वसु सुगुण) आठ मुख्य गुण (लसैं) शोभायमान होते हैं। (ऐसे सिद्ध होनेवाले मुक्तात्मा) (संसार खार अपार पारावार) संसाररूपी खारे तथा अगाध समुद्र का (तरि) पार करके (तीरहिं) किनारे पर (गये) पहुँच जाते हैं और (अविकार) विकाररहित, (अकल) शरीररहित, (अरूप) रूपरहित, (शुचि) शुद्ध-निर्दोष (चिद्रूप) दर्शन-ज्ञान-चेतना-स्वरूप तथा (अविनाशी) नित्य-स्थायी (भये) होते हैं।

भावार्थ :-अरिहन्तदशा अथवा केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उस जीव को भी जिन गुणों की पर्यायों में अशुद्धता होती है, उनका क्रशनः अभाव होकर यह जीव पूर्ण शुद्धदशा को प्रगट करता है और उस समय असिद्धत्व नामक अपने उदयभाव का नाश होता है तथा चार अघातिकर्मों का भी स्वयं सर्वथा अभाव हो जाता है। सिद्धदशा में सम्यक्त्वादि आठ गुण (गुणों की निर्मल पर्यायें) पर्गट होते हैं। मुख्य आठ गुण व्यवहार से कहे हैं; निश्चय से तो अनन्त गुण (सर्व गुणों की पर्यायें) शुद्ध होते हैं और स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन के कारण एक समयमात्र में लोकाग्र में पहुँचकर वहाँ स्थिर रह जाते हैं। ऐसे जीव, संसाररूपी दुःखदायी तथा अगाध समुद्र से पार हो गये हैं और वही जीव निर्विकारी, अशरीरी, अमूर्तिक, शुद्ध चैतन्यरूप तथा अविनाशी होकर सिद्धदशा को प्राप्त हुए हैं ।।१२।।

अब, '**सिद्ध अवस्था (सिद्ध परमात्मा का) वर्णन**' अब अरहन्त से सिद्ध हुए।

**पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमांहि अष्टम भू वसैं;**
**वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।**
**संसारखार अपार पारावार तरि तीरहिं गये,**
**अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ।।१२।।**

**अन्वयार्थ :-** '**(पुनि) केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात्...**' ऐसा केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् 'पुनि' है न ? '**शेष चार अघाति या कर्मों का नाश करके...**' लो ! यह भी अघातिया का नाश किया। इन भगवान ने अघातिया का नाश किया-उसकी तरह समझ लेना। असिद्धभाव का नाश होने पर, आत्मा (की) सिद्धपर्याय की उत्पत्ति होने पर असिद्धपर्याय का (नाश होता है।) असिद्ध है न उदयभाव ? (उसका) नाश हुआ, तब चार अघाति भी नाश हुए-ऐसा कहा जाता है, भाई ! क्या हो ? लो ! इसमें से (लोग) निकालते हैं.. ऐ.. इसमें लिखा, इसमें लिखा... परन्तु यह लिखा, उसे पहले निर्णय करते हैं या नहीं ? समझ में आया ?

वस्तु में स्वभाव की एकाग्रता होने पर अशुद्धता उत्पन्न नहीं होती, उसे नाश किया-ऐसा व्यवहार से कहा जाता है और कर्म तो स्वयं के कारण वह नाश होने के योग्य ही था, वह उसके कारण व्यय हो गया। उसे इस भगवान आत्मा ने नाश किया-ऐसे कथन व्यवहार से कहे जाते हैं। देखो ! इसमें लिखा है, देखो ! तुमने 'छहढाला', 'दौलतरामजी' ऐसा कहते हैं।

कहते हैं, '**अघातिया कर्मों का नाश करके (छिनमांहि)...**' थोड़े समय में, थोड़े समय में अर्थात् एक समय में, सिद्ध होते हैं न ? '**(अष्टप्रभु) आठवीं पृथ्वी-ईषत् प्राग्भार-मोक्ष क्षेत्र में निवास करते हैं...**' लो ! यहाँ तो निवास करते हैं-ऐसा लिखा है। सिद्ध वहाँ है, निवास करते हैं। आगे धर्मास्तिकाय नहीं है, इसलिए आगे नहीं जाते (-ऐसा नहीं)। उनका निवास ही वहाँ है-ऐसा कहते हैं। इसमें आया है या नहीं ? यह उनका निवास ही वहाँ है। निश्चय से अपने आत्मा के स्वरूप में निवास है। समझ में आया ? व्यवहार से आठवीं पृथ्वी-मोक्षक्षेत्र में निवास (करते हैं), यह व्यवहार है। तब अन्य कहते हैं-नहीं, धर्मास्ति नहीं है, इसलिए आगे नहीं जाते। अर्थात् (इसका अर्थ) सादिअनन्तकाल पराधीन हैं। यहाँ तो कहत हैं, वहाँ बसते हैं-(यह) व्यवहार है; अपने असंख्यप्रदेश के अतीन्द्रिय आनन्द में बसना, वह वास्तविकता है; परक्षेत्र में बसते हैं-ऐस कहना, वह उपचारित कथन है।

वहाँ उन्हें '**(वसु) आठ कर्मों का नाश हो जाने से सम्यक्त्वादि.. समस्त (वसु सुगुण) आठ मुख्य गुण शोभायमान होते हैं...**' इसका थोड़ा स्पष्टीकरण भावार्थ में करेंगे। यह आठ (तो) व्यवहार से है न ? निश्चयसे... आठ गुण शोभायमान होते हैं। '**(लसैं)**' यह पर्याय की दशा आठ गुण प्रगटे, उससे आत्मा शोभायमान होता है। उन गुणों की पर्यायें नहीं थी, तब

अशोभायमान था। यह निर्मलदशा भगवान को प्रगट हुई, (उससे) शोभायमान (हुए), यह उनकी शोभा है। यह गुण की निर्मलदशा प्रगट हुई, वह उनकी शोभा है।

'**(ऐसे सिद्ध होने वाला मुक्तात्मा) (संसारखार अपार पारवार) संसाररूपी खारे तथा अपार समुद्र को..**' यह समुद्र खारा होता है न ? लवण। उसकी उपमा दी है। यह समुद्र है न ? संसाररूप खारा समुद्र, असिद्धभाव आदि खारा समुद्र है। कहो,पुण्य और पाप, काम और क्रोध विकार खारा समुद्र है, कहते हैं। समझ में आया ?

आत्मा आनन्द का सागर है; यह विकार है, वह खारा समुद्र है। उदयभाव, संसार है न ? ऐसे '**संसाररूपी खारे तथा अपारसमुद्र को तिरकर...**' अपार है न ? अगाध। आहा..हा...! उदयभाव अगाध... दु:खदशा.. ऐसे समुद्र को तिरकर '**(तीरहिं) दूसरे किनारे पर प्राप्त होते हैं..**' सिद्ध की पर्याय प्रगट करते हैं। यह पर्याय पूरी हो गयी। सिद्ध की पर्याय (प्रगट हो गयी)। उदयभाव का पूर्ण नाश-उदय-असिद्धभाव का पूर्ण नाश; दूसरी दशा की उत्पत्ति-दूसरे किनारे आ पहुँचे। समझ में आया ? संसार किनारा लांधकर अपनी निर्मल सिद्धपर्याय के किनारे पहुँच गये।

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- अपार, यह पारावार समुद्र। अपार, अगाध। क्या कहा ? पारावार अर्थात् समुद्र, अगाध इसलिए अगाध कहा न ? अपार अर्थात् अगाध। उपमा दी अगाध पारावार। संसार अगाध कैसा ? खार। है न ? इसमें शब्दार्थ लिखा है, देखो ! है या नहीं ? '**(संसार खार) संसाररूपी खारे...**' शब्द है न ? इसमें शब्द पड़ा है। अपार अर्थात् आत्मा। पारावार अर्थात् समुद्र। इसमें प्रत्येक शब्द का अर्थ है। है या नहीं ? भाई !

मुमुक्षु :- पारावार..

उत्तर :- पारावार ही समुद्र का नाम है। क्यों पण्डिजी ? लो ! फिर हमारे पण्डित को पूछा न। यहाँ पारावार लिखा है न ! मैं यहाँ कहाँ... इनने लिखा है ऊपर से तो (कहा कि) पारावार अर्थात् समुद्र है। यह तो अपने आता है या नहीं ? उसमें-'प्रवचनसार' में आता है या नहीं ? लो ! 'कुन्दकुन्दाचार्य' में। 'कुन्दकुन्दाचार्य' नहीं ? पारावार शब्द है उसमें ? देखो !

('प्रवचनसार' में 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' की टीका की शुरुआत) '**कश्चिदासन्नसंसार-पारावारपार**' पारावार पार। पारावार पार-ऐसा शब्द है, देखो !

'**जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है ।**' देखो ! ऐसे 'कुन्दकुन्दाचार्य'.. देखो ! समझ में आया ? '**कश्चिदासन्नसंसारपारावारपार**'-ऐसा शब्द है। संसार अर्थात् देखो ! संसार पारावार पार-संसाररूपी समुद्र के पार पहुँच गये। इसमें शब्द है, देखो ! कहीं घर का नहीं है; सब शब्द शास्त्रमें से डाले हैं, देखो ! समझ में आया ? उत्थानिका में ही यह आता है, अहो..! जिनका मुक्तभाव समीप आ गया है, जिनके संसार का अन्त आ गया है-ऐसे आसन्न-संसारपारावर-महासंसाररूप समुद्र, जिनका पार हो गया है। आहा..हा...! समझ में आया ? '**जिन्हें सातिशय विवेकज्योति प्रगट हो गई है...**' लो ! इसमें ऐसा कहा। यहाँ पूरा हो गया। यहाँ तो पूरा बताना है न !

अगाध समुद्र को तिर गये हैं। '**दूसरे किनारे को प्राप्त हुए हैं...**' एक किनारा समाप्त हो गया और अब दूसरे किनारे आ गये। आहा..हा...! समुद्र के इस किनारे से दूसरे किनारे जाते हैं न ? (फिर कहते हैं), बापा ! अब पार पहुँचे, लो ! इसी तरह आत्मा की पूर्णदशा प्रगट हो गयी, (यह) दूसरा किनारा आ गया।

'**और विकाररहित...**' उसका स्वरूप कहते हैं। यह विकाररहित दशा, '**शरीररहित...**' दशा। कल-शरीर नहीं। पहले विकाररहित कहा, फिर शरीररहित कहा। '**रूपरहित...**' नामकर्मसम्बन्धी समीप का दिखता था न ? अन्दर रूप कहाँ है ? '**(शुचि) शुद्ध-निर्दोष, (चिद्रूप) दर्शन-ज्ञान-चेतनास्वरूप..**' जिनका दर्शन और ज्ञानचेतनास्वरूप '**तथा (अविनाशी भये) नित्य-स्थायी होते हैं ।**' लो ।समझ में आया ?

श्रद्धा का जोर है। आता है उसमें, नहीं ? 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में-रागरूप परिणमित नहीं होते और संसार को नहीं चाहते। सिद्धभगवान, रागरूप परिणमित नहीं होते और संसार को नहीं चाहते, यह श्रद्धा का बल है। सम्यग्दर्शन में जो पूरा पूर्णानन्द प्रतीति में लिया है न, वह बल यहाँ वर्ण किया है। भाई ! आता है।

सिद्ध, रागादिरूप परिणमित नहीं होते और संसार को नहीं चाहते-जो श्रद्धा का जोर पहले

प्रगट हुआ न ? पूर्ण... पूर्ण अखण्ड... अखण्ड... अखण्ड... एकरूप। ऐसी उस दशा में संसार का अभाव करके मुक्ति को प्राप्त हुए, उस सम्यग्दर्शन के जोर से रागरूप नहीं होते और संसार को नहीं चाहते। कर्म के कारण नहीं, कर्म नहीं है, इसलिये अब रागरूप नहीं होते, कर्म नहीं है, इसलिए संसार को नहीं चाहते-ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, देखो ! कितने ही ऐसा कहते हैं। अरे.. ! विवाद.. विवाद.. और विवाद..

'**नित्य-स्थायी होते हैं।**' ऐसे के ऐसे, अनन्त गुण जो प्रगट हुए, वे ऐसे के ऐसे रहते हैं- ऐसा कहना है। उनमें बढ़ोतरी तो होती नहीं, परन्तु न्यूनता (भी) नहीं होती; ऐसे के ऐसे, ऐसे के ऐसे अनन्त काल बीतने पर भी वहाँ अब जीर्ण हो जाए (-ऐसा नहीं है)। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. चौबीसी, अनन्त पूर्व में परावर्तन, सिद्धदशा ऊपर अनन्त पुद्गल परावर्तन। भोगते भोगते दशा कुछ हीन होती है या नहीं ?'**(अविनाशी) नित्य-स्थायी होते हैं।**' लो !

**भावार्थ :-** '**अरिहन्तदशा अथवा केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उस जीव को भी जिन गुणों की पर्यायों में अशुद्धता होती है, उनका क्रमशः...**' अरिहन्त में अभी अशुद्धता होती है न ? अरिहन्त के सभी गुण निर्मल नहीं हुए हैं, इसलिए '**अशुद्धता होती है, उसका क्रमशः अभाव करके...**' अशुद्धता क्रमशः मिटती है। उदयभाव को क्षायिक कहा है न ? वह अशुद्धता मिटती जाती है। केवली को भी उतना क्षायिकभाव निर्मल होता जाता है। '**वह जीव पूर्ण शुद्धदशा को प्राप्त करता है...**' वह अरिहन्त जीव पूर्ण सिद्धदशा को प्राप्त प्रगट करता है।

'**और उस समय अपने असिद्धत्व नामक औदयिकभाव का नाश होता है...**' देखो ! यह असिद्धत्व। असिद्ध है न ? असिद्ध उदयभाव। '**और चार अघातिकर्मों का भी स्वयं...**' उस असिद्धभाव का नाश होने पर, वह अपनी पर्याय में हुआ, वह सिद्धदशा प्रगट होने पर... प्रगट होने पर असिद्धपना उत्पन्न नहीं हुआ, उसके उदय का नाश हुआ-ऐसा कहते हैं। '**और चार अघाति कर्मों का भी स्वयं सर्वथा अभाव होता है। उस सिद्धदशा में सम्यक्त्व आदि आठ गुण...**' आठ गुण वर्णन किये न ? ज्ञानावरणीय का नाश होने से केवलज्ञान, दर्शनावरणीय का नाश होने से (केवल) दर्शन (-ऐसे) आठ हैं न ? आठ गुण। '**(गुणों की निर्मल पर्यायें) प्रगट होते हैं।**' ये गुण अर्थात् पर्यायें। '**आठ गुण व्यवहार से कहे हैं; निश्चय से तो अनन्त गुण (सर्व गुणों की पर्यायें) शुद्ध होते हैं...**' वास्तव में अनन्त गुणों की पूर्ण पर्यायें प्रगट हो गयी है।

'**और स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन के कारण एक समयमात्र में...**' देखो ! उसमें था न थोड़े समय में.. थोड़े समय में था न ?'**छिनमांही...**' यह थोड़ा समय। यहाँ यह एक समयमात्र में। '**लोकाग्र में पहुँचकर वहाँ स्थिर रह जाते हैं।**' – नाश करने में थोड़ा समय लगता है–ऐसा ले लिया। समझ में आया ? एक समयमात्र में '**लोकाग्र में पहुँचकर वहीं स्थिर रह जाते हैं।**' निवास करते हैं।'**ऐसे जीव, संसाररूपी दु:खदायी तथा अगाध समुद्र से पार हो गये हैं...**' आहा..हा... ! क्रमश: ले–लेकर देखो ! ठेठ दु:ख से लेकर ठेठ आनन्द तक ले गये हैं।'**और वही जीव निर्विकारी अशरीरी, अमूर्तिक, शुद्ध, चैतन्यरूप तथा अविनाशी होकर सद्धिदशा को प्राप्त हुए हैं।**' लो ! यह सिद्धदशा हुई। अब इसके स्वरूप का जरा–सा अलौकिक वर्णन करते हैं।

## मोक्षदशा का वर्णन

**निजमामाँहि लोक-अलोक गुण, परजाय प्रतीबिम्बित थये;**
**रहिहैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये।**
**धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया;**
**तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥१३॥**

**अन्वयार्थ :- (निजमांहि) उन सिद्धभगवान के आत्मा में (लोक-अलोक) लोक तथा अलोक के (गुण, परजाय) गुण और पर्यायें (प्रतिबिम्बित थये) झलकने लगते हैं; वे (यथा) जिसप्रकार (शिव) मोक्षरूप से (परिणये) परिणमित हुए हैं (तथा) उसी प्रकार (अनन्तानन्त काल) अनन्त-अनन्त काल तक (रहि है) रहेंगे।**

**(जे) जिन (जीव) जीवों ने (नरभव पाय) पुरुष पर्याय प्राप्त करके (यह) यह मुनिपद आदि की प्राप्तिरूप (कारज) कार्य (किया) किया है, वे जीव (धनि धन्य हैं) महान धन्यवाद**

के पात्र हैं और (तिनही) उन्हीं जीवोने (अनादि) अनादिकाल से चले आ रहे (पंच प्रकार) पाँच प्रकार के परिवर्तनरूप (भ्रमण) संसारपरिभ्रमण को (तजि) छोड़कर (वर) उत्तम (सुख) सुख (लिया) प्राप्त किया है।

भावार्थ :- सिद्ध भगवान के आत्मा में केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोक (समस्त पदार्थ) अपने-अपने गुण और तीनोंकाल की पर्यायों सहित एकसाथ, स्वच्छ दर्पण के दृष्टान्तस्वरूप से-सर्व प्रकार से स्पष्ट ज्ञात होते हैं; (किन्तु ज्ञान में दर्पण की भाँति छाया और आकृति नहीं पड़ती) वे पूर्ण पवित्रतारूप मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं तथा वह दशा वहाँ विद्यमान अन्य सिद्ध-मुक्त जीवों की भाँति *अनन्तानन्त काल तक रहेगी; अर्थात् अपरिमित काल व्यतीत हो जाये, तथापि उनकी अखण्ड ज्ञायकता-शान्ति आदि में किंचित् बाधा नहीं आती। यह मनुष्यपर्याय प्राप्त करके जिन जीवों ने यह शुद्ध चैतन्य की प्राप्तिरूप कार्य किया है वे जीव महान धन्यवाद (प्रशंसा) के पात्र हैं और उन्होंने अनादिकाल से चले आ रहे पंच परावर्तनरूप संसार के परिभ्रमण का त्याग करके उत्तम सुख-मोक्षसुख प्राप्त किया है ।।१३।।

## मोक्षदशा का वर्णन

निजमाँहि लोक-अलोक गुण, परजाय प्रतीबिम्बित थये;
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये।
धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया;
तिनहीं अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ।।१३।।

अन्वयार्थ :- '(निजमांहि) उन सिद्धभगवान के आत्मा में...' उनकी ज्ञान की पर्याय में

*जिसप्रकार बीज को यदि जला दिया जाये तो वह उगता नहीं है, उसीप्रकार जिन्होंने संसार के कारणों का सर्वथा नाश कर दिया, वे पुनः अवतार-जन्म धारण नहीं करते। अथवा जिसप्रकार मक्खन से घी हो जाने के पश्चात् पुनः मक्खन नहीं बनता, उसीप्रकार आत्मा की सम्पूर्ण पवित्रतारूप अशरीरी मोक्षदशा (परमात्मपद)प्रगट करने के पश्चात् उसमें कभी अशुद्धता नहीं आती-संसार में पुनः आगमन नहीं होता।

'**लोक और अलोक के गुण और पर्याय...**' देखो ! '**झलकने लगते हैं, अर्थात् ज्ञान होने लगते है...**' अन्दर में-पर्याय में ज्ञान होने लगते है। लोक और अलोक-यह सब केवलज्ञान की पर्याय में झलकते हैं अर्थात् ज्ञात होते हैं, ऐसा। '**वे जिस प्रकार से मोक्षरूप परिणमित हुए हैं...**' वे सिद्धभगवान अपनी मुक्त आनन्ददशारूप हुए हैं, '**वैसे अनन्त काल तक रहेगें।**' ऐसे के ऐसे अनन्तकाल रहेंगे, अनन्तकाल ऐसी की ऐसी दशा... आहा..हा... ! .. .. आत्मा की पूरी पर्याय आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. भूतकाल तो संसार का काल अनन्तवें भाग, संसार की दुःख की पर्याय का काल अनन्तवें भाग; आनन्द की पर्याय का काल अनन्तगुना। समझ में आया ? आहा.. ! ऐसे जाएं तो असंख्य समय मोक्षमार्ग साधा है। भगवान आत्मा ने असंख्य समय में साधन किया है और उसके फल में अनन्तकाल रहें, वैसी मोक्षदशा प्रगट की है। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- ऊँचा ?

उत्तर :- ऊँचा, हाँ; ऊँचे के लिये तो यह बात की जाती है। पहले तो बात की कि संसार की दशा का काल, उसकी अपेक्षा मोक्ष का (काल), अनन्तगुना है-एक बात। दूसरा-इस स्वरूप को साधने काल से वह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुना है। समझ में आया ? ऐसा महान लाभ का व्यापार है। यह कहा न ? धनि धन्य वह मनुष्य, नरभव प्राप्त करके यह कार्य किया। आहा..हा... ! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य का दर्शन, उसका ज्ञान और चारित्र... इसे साधने में-सिद्ध होने में इसे असंख्य समय ही लगते हैं; अनन्तकाल नहीं लगता। यह असंख्य समय में साधा है। केवलज्ञान, मोक्षदशा अनन्तकाल ऐसी की ऐसी रहेगी।

वह आया नहीं था ? क्या आया था ? 'नियमसार'। ध्रुव में स्थिर होने पर ऐसा का ऐसा रहेगा। 'नियमसार' में नहीं ? मुँह आगे कुछ उसकी भावना करने... नीचे आया था, क्या था ? कारण के जैसा ही कार्य होता है। कारण के जैसा ही कार्य होता है; इसलिए स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास ही-स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास ही वास्तव में अनन्तकाल तक स्वरूप में स्थिर रह जाने का उपाय है। समझ में आया ? स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास। भगवान आत्मा जो दृष्टि में अनन्तकाल तक स्वरूप में स्थिर रहे-स्थिर रह जाने का यह उपाय है। यह उसमें लिखा है। समझ में आया ?

(यहाँ कहते हैं)-'**अनन्तकाल तक रहेंगे। जिन जीवों ने पुरुष पर्याय प्राप्त करके,...**' पुरुष पर्याय प्राप्त करके होता है न ? '**(नरभव पाय) यह मुनिपद इत्यादि की प्राप्तिरूप..**' पुरुष को ही यह मुनिपद होता है और पुरुष को ही केवलज्ञान और सिद्धदशा होती है। यह '**कार्य किया, वह जीव (धन्य) महान धन्यवाद के पात्र हैं...**' धनि धन्य है न, दो बार ? अर्थात् दो बार धन, धन्य (कहा) '**महान धन्यवाद के पात्र हैं...**' उन्हें कहाँ धन्यवाद चाहिए अब ? परन्तु अपने भाव को... ओ..हो... ! यह दशा ! पूर्ण आनन्ददशा, वह ऐसी की ऐसी अनन्तकाल रहेगी। वह धन्य अवतार, बापा ! धन्य सफल कार्य, आत्मा का एक सफल कार्य है। '**और उन्हीं जीवों ने अनादिकाल से चले आ रहे...**' पंच परावर्तन-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का भटकना-'**पाँच प्रकार के परावर्तनरूप संसार परिभ्रमण को छोड़कर उत्तम सुख प्राप्त किया है।**' ऐसे जीव को धन्य कहा जाता है। उसे फिर से अवतार नहीं होता-इत्यादि कहेंगे..।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❁

साधुके अट्ठाईस मूल-गुण, भगवान द्वारा हुयी सत्य प्ररूपणानुसार यथोक्त न हो व उनका छेदन होता हो तो उसे साधु नहीं कहते, द्रव्यलिंगी भी नहीं कहते - ऐसी सत्य प्ररूपणासे किसीको भी दुःख हो, हम ऐसा नहीं चाहते। भाई ! बापू ! जब घासका तिनका भी हल्केसे चुभनेपर दुःख होता है, तो तुझे मिथ्या-श्रद्धासे तो दुःख कितने होंगे - उनका अनुमोदन कैसे हो सके ? सब आत्माओंको शान्ति...शान्ति...शान्ति हो । यहाँ हमें तो किसीसे विरोध नहीं है, कोई हमारा विरोध नहीं करता । सभी आत्माएँ द्रव्यस्वभावसे तो साधर्मी हैं । विरोधका भाव तो स्वयंको ही हानिकारक है, दूसरोंको नहीं ; और अविरोधताका भाव भी अपनेको ही लाभप्रद है, अन्यको नहीं। आहा हा ! आत्मा तो सबसे उदास... उदास...उदास है । (परमागमसार - ५११)